Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2021: 7.278, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, JUNE-JULY, 2022, VOL-10/52

वैदिक वाड.मय में लोकतन्त्र की अवधारणा

डॉ. सीमा रानी शर्मा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

Paper Received On: 25 JULY 2022

Peer Reviewed On: 31 JULY 2022

Published On: 1 AUGUST 2022

Abstract

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। वैदिक साहित्य में लोकतांत्रिक उन्नत विचार दुनिया में हजारों वर्ष पूर्व ही प्रदर्शित किये जा चुके हैं, उस समय जब लोग कबीलों में रहा करते थें वेदों में लोकतंत्र की अवधारणा के अनेक सन्दर्भ प्रस्तुत किये गये हैं। जिनमें सभा, समिति, पंचजना जैसी लोकतांत्रिक अवधारणाओं की व्याख्या अति प्राचीन है। असंख्य संस्कृत रचनांए समय–समय पर मानव को सही दिशा की ओर ले जाती हैं। वैदिक साहित्य में प्राचीन लोकतंत्र के सन्दर्भ भलिभांति देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि वेदों को सृष्टि के आदि संविधान की संज्ञा दी जाती है। राजतंत्र के सभी प्राचीन सन्दर्भों में भी राजधर्म को सभी धर्मों का सार तत्व माना गया है। यही नहीं गणतंत्र को राजधर्म का अमूल्य कारक भी बताया गया है। इससे स्पष्ट है लोकतंत्र की बात हो या गणतंत्र की वैदिक साहित्य दोनों के विचार को दर्शाता है।

मुख्य शब्दः *लोकतंत्रिक, वैदिक, प्रदर्शित, अवधारणा, राजतंत्र, राजधर्म, अमूल्य, कारक*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

भारतीय बौद्धिक सम्पदा विश्व का सदा से ही प्रतिनिधित्व करती रही है और आगे भी करती रहेंगी। विश्व साहित्य की प्रथम रचना 'वेद' है जो प्रारम्भ से लेकर आजतक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व का मार्ग दर्शन करती है और मानव को उचित मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती रहती है। संस्कृत को पुरातनी, मृत और अनुपयोगी कहने वाले ये नहीं जानते कि सहस्त्राब्दियों पूर्व रचित संस्कृत रचनाएँ आज भी मानव को दिशा प्रदान करती हैं। जीवन का व्यवहारिक पक्ष हो या राजनैतिक, आर्थिक हो चाहे सामाजिक, दार्शनिक, अध्यात्मिक नैतिक चाहे जो भी पक्ष हो, वैदिक साहित्य से अछूता नहीं है। 'लोक तंत्र की अवधारणा वेदों की देन है।' वैदिक साहित्य से हमें प्राचीन शासन तन्त्र से सम्बन्धित अनेक प्रणालियों की जानकारी मिलती है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि प्राचीन भारत में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन था अर्थात् वैदिक काल में जनतन्त्रात्मक शासन प्रचलित था भारतीयों में जनतन्त्र के प्रति भक्ति भावना आदि काल से ही रही है, यहां का राजतन्त्र भी प्रकृत्या जनतान्त्रिक ही रहा है। डॉ॰ जायसवाल का मत है कि आरम्भिक काल में प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था स्थापित हुई।[1]

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

लोकतंत्र अर्थात् 'लोगों का शासन' का संस्कृत भाषा में लोक अर्थात् जनता, तंत्र अर्थात् शासन। लोकतंत्र की परिभाषा के अनुसार ''यह जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन है।'' चारों वेदों में इस सम्बन्ध में कई सूत्र मिलते हैं और वैदिक समाज का अध्ययन करने के बाद यह सिद्ध भी होता है कि वेद आदि संविधान हैं। अतः वैदोक्त भाषा, संस्कृति, धर्म–दर्शन एवं समस्त ज्ञान–विज्ञान स्वतः प्राचीनतम सिद्ध हो जाते है। वेदों की महिमा वर्णित करते हुए महर्षि मनु ने कहा– 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'[2] 'सर्व वेदात् प्रसिध्यति' अर्थात् वेद समस्त धर्म का मूल हैं और संसार के सभी कार्य वेद से सिद्ध होते हैं। वेद व्याख्याकारों ने मनु के इस कथन को सत्य सिद्ध किया है। संसार की विविध विद्याओं का मूल वेद मंत्रों में प्राप्त है। राजधर्म की जो विस्तृत चर्चा वाल्मिकि रामायण तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में उपलब्ध होती है उसका मूल स्रोत्र चारों वेद ही हैं। वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में राजनैतिक अवस्था समुन्नत थी। ऋग्वैदिक काल में राजनैतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई 'कुटुम्ब' थी। उस समय संयुक्त परिवार होते थे और परिवार में जो सबसे बुजुर्ग व्यक्ति होता था वह कुटुम्ब का प्रधान होता था। अनेक कुटुम्बों का समूह 'ग्राम' और कई ग्रामों का समूह 'विश' और कई विश का समूह 'जन' और यही जन का समूह 'राष्ट्र' का निर्माण करता था। आरम्भ में 'जन' का प्रधान केवल 'जन का नेता' होता था। ऐतरेय बाह्मण से हमें वैदिक कालीन भारत की शासन पद्धतियों का पता चलता है। आठ प्रकार के संविधान इस समय लागू थे।[3] 'ऐरिय ब्राह्मण' में– साम्राज्य, भोज्य, स्वराज्य, वैराज्य, राज्य, महाराज्य, अधिपति या अधिपत्य आदि।

राजा का निर्वाचन, राजा के कर्तव्यों का निर्धारण, मन्त्रि मण्डल का गठन, सभा समितियों के कर्तव्यों का निर्देशन, विविध शासन प्रणालियाँ, अर्थव्यवसथा, करनिर्धारण आदि का उल्लेख उन्नत राजनैतिक अवस्था का द्योतक है। इनमें से कुछ राजतन्त्रात्मक और कुछ लोकतन्त्रात्मक थीं।

यजुर्वेद में आदर्श राष्ट्र के तीन गुण बतलाये गये हैं[4]–

1. स्वराजस्थ (राष्ट्र स्वतन्त्र हो)
2. जनभृतस्थ (वह जनहितकारी हो)
3. विश्वभृतस्थ (वह विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो)

वेदों में ऐसे समाज की परिकल्पना की गई है जहाँ सभी समान हो सबके हृदय एक हों–

समानी वआकृतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।।[5]

भारतीय संविधान में समानता के अधिकार का वर्णन किया गया है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में इसका वर्णन मिलता है कि प्रत्येक नागरिक समभाव हो और कोई किसी से अपने को ज्येष्ठ या कनिष्ठ ना समझे–

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिछोऽमध्यमासो महसा विवावृधुः।

सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन।।[6]

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

ऋग्वेद के इस मन्त्र में कहा गया है कि देश के नागरिकों में परस्पर बड़े या छोटे की भावना नहीं होनी चाहिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि मनुष्य राष्ट्र की सामूहिक हित की कामना को पूर्ण करने में सक्षम हो।

वैदिक शासन व्यवस्था प्रजातन्त्रमूलक राजतन्त्र थी। ऋग्वेद[7] एवं अथर्ववेद के कई सूक्तों में प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है कि पाँचों दिशाओं से आई हुई ये प्रजायें तुझे राज्य के लिए निर्वाचित करती हैं।[8]

'विशः' (जनता) राजा को शासन कार्य के लिए वरण करती है। वरण द्वारा जब कोई व्यक्ति राजा के पद पर नियत होता था तो उससे यह आशा की जाती थी कि वो धर्म–पूर्वक प्रजा का पालन करे। इस निर्वाचन का आधार गुणों एवं वीरता में सर्वोत्कृष्टता होता था। अथर्ववेद में लिखा है कि यह द्यौः और पृथ्वी सब ध्रुव हैं और सारा संसार विश्व ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव हैं इसी प्रकार यह राजा भी ध्रुव रहे। तुम हमारे बीच में अविचल रूप से ध्रुव होकर स्थित रहो। सब प्रजा तुम्हें वाहे और तुमसे राष्ट्र का अधिकार कभी छीनना ना पड़े। इस राष्ट्र को धारण करो। प्रजा राजा का वरण इसी प्रयोजन से करती थी कि राजा राष्ट्र एवं प्रजा की रक्षा करे।[9]

राज्याभिषेक के राजा को व्याघ्र की चर्म पर बैठाकर उसके पराक्रम की कामना करते हुए अथर्ववेद के मन्त्र में कहा गया है।कि तू व्याघ्र है, इस व्याघ्रचर्म वर बैठकर तू पराक्रम कर और प्रजा तुझे चाहे।[10] राजा के रूप में चयनित होने पर राजा शपथ लेते हुए कहता था कि मैं सत्यनिष्ठा के साथ शपथ लेता हूँ कि 'जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ, जिस रात्रि मेरी मृत्यु होगी उन दोनों के मध्य में मैने जो पुण्य व शुभ कर्म किये हैं वे सभी मेरे पुत्र परिवार सहित नष्ट हो जायें यदि मैं किसी भी प्रकार से प्रजा और देश के प्रति द्रोह करूँ।[11] यह मार्मिक कथन उस समय की राज्य व्यवस्था के गौरवशाली स्वरूप को दर्शाता है। इसके पश्चात पुरोहित पलाश की छड़ी से राजा की पीठ पर हल्का प्रहार करता था जिसका आशय यह होता था कि राजा अदण्डनीय है।[12] वेदकालीन राज्य व्यवस्था में ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि राजा अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है और प्रजा का शोषण करता है तो अपने पद से हटाया जा सकता है। राज्य व्यवस्था पर धर्म का विद्वानों का एवं श्रेष्ठ जनों का नियन्त्रण था। धर्म की उदारता और शासक –शासित के बीच समानता का यह उच्च आदर्श केवल वैदिक संस्कृति में ही देखने को मिलता है।

वेदों में अनेक स्थानों पर राजा के कर्तव्यों का भी उल्लेख मिलता है– राष्ट्र के नियन्त्रक राजा तुम दृढ़ता पूर्वक उत्तरदायित्वों को सम्भालो, कृषि उन्नति, जन कल्याण, आर्थिक उन्नति और राष्ट्र की सुदृढ़ता के लिए यह पद तुम्हें दिया जा रहा है, राजा व्यापारियों एवं प्रजा की सुरक्षा करें। व्यापार एवं शिक्षण को संरक्षण दें। प्रजा में सुरक्षा के भाव पैदा करें और उसे निर्भय बनाये।[13] राज्य में चाहे किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली हो, राज्य शासन का प्रकार साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, परमेष्ठय, राज्य, महाराज्य, अधिपत्य और सार्वभौम आदि में से चाहे किसी भी ढंग का हो परन्तु शासन की शक्ति

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

जिस भी व्यक्ति के हाथों में हो जाती थी उसे यही शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी।[14] यही वैदिक लोकतन्त्र की विशेषताएं थी कि 'राष्ट्र हित सर्वोपरि' होता था।

जनता द्वारा वरण किये जा चुकने पर राजा अकेला शासन कार्य का संचालन करता हो यह बात नहीं थी। राजा स्वेच्छा पूर्वक शासन नहीं कर सकता था क्योंकि इस युग में 'सभा एवं समिति' नामक संस्थाएँ थी जो राजकार्य में सहयोग के साथ–साथ राजा पर भी नियन्त्रण रखती थीं। इसमें राष्ट्र के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था और कार्यक्षेत्र न्याय विधान तक ही सीमित न होकर पूरे राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी व्यवस्थाओं से सम्बद्ध था।

वेदों में मन्त्रिमण्डल के लिए 'समिति' शब्द का प्रयोग किया गया है।[15] अथर्ववेद में सभा एवं समिति को प्रजापति (राजा) की दो पुत्रियाँ कहा गया है।[16] राजा उनसे प्रार्थना करता है कि वे मेरी रक्षा करें। वे मुझे उत्तम शिक्षा (समुचित परामर्श) दें, अतः स्पष्ट है कि सभा और समिति प्रजापति की दुहिताएँ है जिन्हें राजा ने नहीं बनाया अपतु ईश्वरीय विधान का परिणाम है। सभा छोटी इकाई होती थी परन्तु इसका स्वरूप व्यापक था। यह ग्राम सभ से लेकर केन्द्रीय सभा तक होती थी। सभा के सदस्य को सभासद कहा जाता था। सभा के अध्यक्ष को सभापति कहते थे। राष्ट्रीय स्तर की 'महासभा' होती थी इसमें राष्ट्र के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था, इसमें सार्वजनिक जीवन से सम्बद्ध सभी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार विनिमय किया जाता था, इसका कार्यक्षेत्र पूरे राष्ट्र को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी व्यवस्थाओं से सम्बद्ध था।

वैदिक युग में 'समिति' में जनपद की सम्पूर्ण 'विश' एकत्रित हो सकती थी। वहाँ एकत्रित व्यक्ति सब विचारणीय विषयों पर बातचीत करते थे। 'समिति' में विभिन्न विषयों पर खुला विचार होता था। 'समिति' में ना केवल राजनैतिक विषयों पर अपितु आध्यात्मिक व गूढ़ विषयों पर भी विचार होता था। शन्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों में समिति में ब्रहम विद्या विषयक विचारों का उल्लेख मिलता है। समिति का अपना एक अध्यक्ष होता था जिसे ईशान कहते थे। ईशान के सभापतित्व में ही समिति का कार्य चलता था पर राजा भी विभिन्न अवसरों पर समिति में उपस्थित होता था। ऋग्वेद में समिति में जाने वाले राजा का निर्देश उपमान रूपेण किया गया है।[17]

'सभा' और 'समिति' के संगठन में यदि हम अन्तर देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'सभा' 'समिति' की अपेक्षा छोटी संस्था होती थी। अथर्ववेद में सभा को नरिष्टा कहा गया हैं[18] उसके सदस्य केवल बड़े लोग ही होते थे और उसका प्रधान कार्य न्याय करना था। न्याय के लिए अभियुक्त रूप में जिस व्यक्ति को सभा के सम्मुख पेश किया जाता था उसे 'सभाचर' कहते थे। यजुर्वेद के ही एक अन्य मन्त्र में सभा में किये गये पाप के प्रायाश्चित का उल्लेख किया गया है, यदि न्याय करते हुए सभासदों से अनजाने में या जानबूझ की जो भूल होती थी वह पाप कहा जाता था और उससे छूटने की प्रार्थना की जाती थी। सूत्र ग्रन्थों और धर्म शास्त्रों के समय में भी 'सभा' न्याय का ही कार्य करती थी। या तो

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

सभा में जाये नहीं, जाये तो वहाँ सोचसमझ कर अपनी बात कहनी चाहिए, सभा में जाकर जो गलत बात कहता है वह पापी होता है।

वैदिक वाड्.मय में अधिकारों के साथ कर्तव्यों का भी वर्णन है। एक का अधिकार दूसरे का कर्तव्य बन जाता है। जहाँ अधिकार है वहाँ कर्तव्य भी है, शासन में न्यायव्यवस्था का महत्व सर्वोपरि होता है जब न्याय व्यवस्था उचित होती है तभी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सकता है। ऋग्वेद एक मन्त्र में उत्तम शासन में न्यायाधीश अधिकारियों की स्थिति एवं उन्हीं के उत्तम न्याय व्यवस्था से राज्य में उत्तम शासन की व्यवस्था दर्शाई गई है, जिस प्रकार सूर्य के संयोग से ब्रह्माण्ड के अनेक पिण्ड अपने–अपने कक्ष में विचरण करते हैं। उनमें किसी भी प्रकार की अव्यवस्था नहीं होती उसी प्रकार उत्तम शासन में न्यायाधीशों एवं अधिकारियों की स्थिति हो।

प्रजा का पालन, रक्षण एवं संवर्धन ही राज्य का सर्वोपरिकार्य था। देश भक्ति का संचार, सुदृढ़ अर्थ व्यवस्था, न्यायप्रियता आदि वैदिक लोकतन्त्र की विशेषताएं थीं। जिसमें नागरिकों में ऊँचे से ऊँचे आदर्शों एवं सिद्धान्तों को पोषित किया जाता था जिससे नागरिक आत्मविकास की ओर बढ़े और राष्ट्र की उन्नति में अपना सम्पूर्ण योगदान दे सके। इस प्रकार राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति वैदिक लोकतन्त्र का लक्ष्य था।

अस्तु वेद सत्य ज्ञान की अप्रतिम राशि है जिसमें त्रिकाल सत्य सिद्धान्तों का समावेश है। वैदिक युग के शासन को जनतन्त्रात्मक या लोकतन्त्रात्मक (जन या जनता का राज्य) कहा जा सकता है।

सन्दर्भ

डॉ॰ बी॰के॰ सरकार ''दि पालिटिकल इन्स्टीट्यूशन एण्ड थियारिज ऑफ द हिन्दू पृ॰33''
मनुस्मृति– 6/6/13
ऐतरेय ब्राह्मण– 8/14
स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त................
जनभूतस्थ राष्ट्र दा राष्ट्र में दत्त ....
विश्वभृत स्व राष्ट्र दा राष्ट्र में दत्त................ यजुर्वेद 10.4
ऋग्वेद – 10/191/4
ऋग्वेद – 05/59/6
ऋग्वेद – 10/173.1 से 6 तक
त्वा विशो वृणतां राजानं त्वामिमाः प्रदिशः (अथर्ववेद 6.88.3)
ऋग्वेद – 10/173.4
अथर्ववेद– 19/03/30
यां च रात्रिमजायेऽहं यां च प्रेतोऽस्मि, तदुभयमन्तरेण इष्टापूर्त में लोक सुकृतमायुः प्रजां वृजीथा यदि ते द्रुहमेयमिति (शतपथ ब्राह्मण–5/4/4/7)
ऐतरेय ब्राह्मण– 8/3/15
ऐतरेय ब्राह्मण– 5/15
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएं और राजनैतिक विचार (सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ॰–52)
ध्रुवाय ते समितिः कल्पताम् (अथर्ववेद'6/88/3)
अथर्ववेद– 7/1/63
ऋग्वेद – 9/92/2/6
अथर्ववेद– 4/8/5

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language